मेवाड़ के जैन वीर

□ श्री शम्भूसिंह "मधु"
४ सीताफल गली, गणेशघाटी, उदयपुर (राज०)

जिस प्रकार ज्ञान, भक्ति, कला, साहित्य, विज्ञानादि प्रभृति प्रतिभा-गुण किसी देश, समाज, जाति, रक्त, वर्ण व व्यक्ति की धरोहर नहीं है, उसी प्रकार वीरता भी मनुष्य का सहज धर्म है, जो समय-समय पर धरती के सभी स्थानों और मानव के सभी कुल-समुदायों में अपने शौर्य और पराक्रम का परिचय देता रहा है।

युगयुगीन मानव और अनन्त काल-धारा का जब से परिचय हुआ तब से पता नहीं किन-किन मनुष्यों ने कब-कब कैसी-कैसी अद्भुत वीरता का परिचय दिया? सभ्य समाजों का अपने द्वारा संकलित इतिहास तो बहुत बाद का, बहुत छोटा दस्तावेज है। आज का सभ्य मनुष्य जो कल मात्र आदिमानव था, कैसे-कैसे विकराल जानवरों की हिंसा को अपनी वीरता से पार कर सभ्यता के पहले पड़ाव तक पहुँचा है। अपने अस्तित्व को बचाये रहने की बलवती भावना ही तब उसकी वीरता थी।

मेवाड़ वीरभूमि है और जैन-धर्म वीरधर्म। यहाँ दोनों का जैसा मणिकांचन संयोग हुआ वैसा अन्यत्र शायद कम हुआ होगा। अहिंसा पर आधारित जैन धर्म वस्तुतः क्षत्रिय धर्म है। वैदिक धर्म के प्रथम पूर्ण मानव अवतार और जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने 'विश्व-मानव' के लिए 'असि, मसि, कृषि' कर्म की जो व्यवस्था आरम्भ व स्थापित की, उसमें 'असि' अर्थात् तलवार राज्य व सुरक्षा की प्रतीक है। जैन-धर्म के 'कम्मे सूरा सो धम्मे सूरा' जैसे आदि सिद्धान्त-वाक्य मनुष्य के ओज को इंगित करते हैं। ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर और भावी तीर्थंकर पद्मनाभ आदि सभी का क्षत्रिय कुलोत्पन्न होना आदि जैनधर्म के वीर धर्म होने के पूर्ण प्रमाण है। इससे अधिक किसी धर्म में वीरता की स्वीकृति व पुष्टि नहीं मिलेगी।

जैन धर्म की पौराणिक साहित्य में अनेक महत्त्वपूर्ण जैन वीरों द्वारा युद्धों के माध्यम से राज्यों की स्थापना करना, राज्यों को जीतने व राज्यों की रक्षा करने के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु मेवाड़ में जैन वीरों द्वारा राज्य भार ग्रहण करने हेतु नहीं अपितु लोक-स्वतन्त्रता व लोक-जीवन की रक्षा हेतु युद्ध करने, युद्धों में सहयोग करने के अनेक उदाहरण व प्रमाण मिलते हैं। यद्यपि इन युद्धों में जैन वीरों की प्रथम भूमिका नहीं है, किन्तु निस्सन्देह प्रथम से अधिक महत्त्वपूर्ण व प्रशंसनीय भूमिका है। मेवाड़ के कतिपय जैन वीर तो ऐसे हुए हैं, जिन्होंने अपने वीरता, बल, बुद्धि-कौशल और धन-वैभव से क्षत्रियों के समान ही मेवाड़ की स्वतन्त्रता, सम्मान और गौरव की रक्षा की है।

जाल मेहता—मेवाड़ के जैन वीरों में शोध के बाद प्रथम ज्ञात नाम जाल मेहता का आता है। जाल मेहता जालोर के शासक मालदेव चौहान के दीवान थे तथा जब मालदेव मुगल शासकों की सेवा में दिल्ली जाते, अथवा युद्ध अभियानों में भाग लेते अथवा मुगल शासक उनका कूटनीतिक कार्यों में अन्यत्र उपयोग करते तब जालोर का सारा शासन और प्रशासन जाल मेहता ही सम्भालते। इस प्रकार मालदेव चौहान अपने दीवान जाल मेहता की योग्यता पर पूर्णतः निर्भर एवं आश्वस्त थे।

अलाउद्दीन खिलजी ने जब मेवाड़ राज्य की प्रथम ऐतिहासिक राजधानी चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण किया तब मेवाड़ के प्रथम राजवंश के रावल शासकों ने दुर्ग की रक्षा में वीरतापूर्वक अपनी सम्पूर्णाहुति दे दी। इतनी कठिनाई से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीते गये चित्तौड़गढ़ दुर्ग को राजपूत शक्ति का पुनः केन्द्र बनने से रोकने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने अपने पुत्र खिज्र खां खिलजी को चित्तौड़ का शासक बनाकर चित्तौड़ नगर का नाम ही खिज्राबाद कर दिया और खिज्र खां की सहायता के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर के मालदेव चौहान को चित्तौड़ का किलेदार बनाया।

किन्तु शीघ्र ही खिलजियों के विरुद्ध तुगलकों ने युद्ध छेड़ दिया। तब खिज्रखां अपने वंश और साम्राज्य की सहायता के लिये चित्तौड़ दुर्ग का सारा भार मालदेव पर छोड़कर दिल्ली चला गया। किन्तु युद्ध में खिलजियों की हार हुई और तुगलक साम्राज्य के नये शासक बने। किन्तु चित्तौड़ में पुनः राजपूत शक्ति की सम्भावना देखते हुए मुहम्मद शाह तुगलक ने पुनः चित्तौड़ को जीता।

पर खिलजी वंश की भाँति तुगलक वंश भी देश के शासन में अल्पकालीन सिद्ध हुआ। दिल्ली अपने ही संघर्षों में केन्द्रित और लिप्त होती जा रही थी तथा दिल्ली से किसी प्रकार की सहायता व सुरक्षा नहीं मिलने से मालदेव बड़ा निराश हुआ। इधर दिल्ली के संघर्षों का लाभ उठाकर रावलों के छोटे भाइयों की सिसोदिया शाखा का सिसोदा निवासी नवयुवा हमीर सक्रिय हुआ। तब मालदेव ने अपनी पुत्री का विवाह हमीर से कर दिया।

नववधू ने सुहाग-रात में ही हमीर से कहा—'यदि आप अपने पूर्वजों का चित्तौड़ राज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो आप मेरे पिता से दहेज में धन-वैभव माँगने के बजाय जाल मेहता को माँग लेना। जाल मेहता आपका मनोरथ पूरा कर देंगे।' हमीर ने ऐसा ही किया और जाल मेहता चित्तौड़ आ गये तथा मालदेव की ओर से किले का काम देखने लगे। किले में मालदेव के सैनिकों के अतिरिक्त प्रहरी के रूप में सामान्य मुस्लिम सैनिकों की एक बड़ी टुकड़ी रहती थी।

जब हमीर के पहला पुत्र क्षेत्रसिंह हुआ तब उपयुक्त अवसर मानकर जाल मेहता ने एक योजना बनायी। जिसके अनुसार हमीर को प्रातःकाल कुलदेवी की पूजा के लिये दुर्ग में प्रवेश होने देना था। योजना के अनुसार हमीर अपनी छोटी सी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना लेकर रात को ही किले के द्वार पर पहुँच गया और जाल मेहता ने आधी रात को ही दुर्ग का द्वार खोलकर हमीर व उसकी सेना को किले में प्रवेश करा दिया। हमीर ने रात्रि में ही चित्तौड़ का दुर्ग जीत लिया और प्रातःकाल उसने अपने मेवाड़ के राजवंश का ध्वज दुर्ग पर फहराया तथा चित्तौड़ का खिज्राबाद नाम रद्द कर पुनः चित्तौड़ रखा और जाल मेहता को अपना दीवान नियुक्त किया। यही हमीर मेवाड़ के वर्तमान राणा राजवंश का प्रथम शासक था।

इस प्रकार राजपूतों के हाथ से खोये हुए चित्तौड़ को पुनः राजपूतों को दिलाने वाला जाल मेहता स्थायी रूप से मेवाड़ में ही बस गया और उसके वंशधरों को मेवाड़ के राणाओं ने अनेक सामरिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व के किलों का किलेदार एवं अन्य उच्च गरिमामय प्रशासनिक पदों पर रखा। जाल मेहता के वंशज आज भी मेवाड़ की अन्तिम ऐतिहासिक राजधानी उदयपुर में निवास करते हैं। इसी वंश के वर्तमान में जीवित वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी मा० श्री बलवन्तसिंह मेहता ने मेवाड़ प्रजा-मण्डल का प्रथम संस्थापक-अध्यक्ष बनकर मेवाड़ में अँग्रेजों एवं सामन्तों की गुलामी के विरुद्ध स्वतन्त्रता का ऐतिहासिक संघर्ष किया और कई बार जेलों का कठोर जीवन जीया। आप गांधीजी के भी निकट सम्पर्क में आये तथा देश को स्वतन्त्रता मिलने पर संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य, राजस्थान सरकार के मन्त्री एवं प्रथम लोक सभा के विजयी संसद सदस्य रहे।

कर्माशाह—अपने पिता राणा रायमल की तरह राणा सांगा ने भी मुगलों के विरुद्ध स्वतन्त्रता संघर्ष करने वाले कई क्षत्रिय एवं अन्य जातियों के वीरों को मेवाड़ राज्य में आमन्त्रित करने की नीति का अनुसरण किया और वह अलवर से भारमल कावड़िया तथा कर्माशाह को आग्रहपूर्वक चित्तौड़ लाया तथा युवा कर्माशाह को अपना दीवान नियुक्त किया।

कर्माशाह अत्यन्त धनाढ्य व्यापारी था तथा अपनी सारी धन-सम्पदा वह चित्तौड़ ले आया। किन्तु निरन्तर युद्धों में रत रहने से मेवाड़ की निर्बल आर्थिक दशा वह जानता था तथा अपने स्वामी राणा सांगा की मुगलों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधिपत्य से भारत को स्वतन्त्र कराने की महत्वाकांक्षा से वह परिचित था। अतः वह समझता था कि मेवाड़ में निरन्तर बढ़ाई जा रही सैन्य संख्या और भारी युद्धों के व्यय में धन की सदैव अत्यधिक आवश्यकता रहेगी। इसलिए कर्माशाह ने दीवान के पद पर कार्य करते हुए भी अपने निजी धन की पूँजी से चित्तौड़ में अपना व्यवसाय स्थापित किया और वह न केवल देश में अपितु बंगाल की खाड़ी द्वारा चीन तक अपना निर्यात का व्यवसाय कर धन अर्जित करता। यही कारण है कि जब राणा सांगा ने गुजरात, मालवा और दिल्ली के निकट क्षेत्र के सूबेदारों से युद्ध कर उन्हें पराजित किया तब और मेवाड़ के राजवंश में सबसे विशाल सेना रखी तब भी मेवाड़ राज्य में कभी धन की कमी नहीं आयी।

गुजरात के शासक मुहम्मद शाह ने जब अपने पुत्र बहादुरशाह को गुजरात से निकाल दिया तब बहादुरशाह राणा सांगा के आश्रय में चित्तौड़ आया। सांगा ने उसे अपने पुत्रवत् आश्रय दिया। जब बहादुरशाह ने अपने पिता के विरुद्ध युद्ध करने की इच्छा जाहिर की तब कर्माशाह ने बहादुरशाह को एक लाख रुपये का सामान और खर्चे के लिये एक लाख रुपये नकद की सहायता की।

बहादुरशाह जब गुजरात का शासक बना तब उसने चित्तौड़ में कर्माशाह को सन्देश भिजवाया कि 'वह अब अपने कर्ज का रुपया लौटाना चाहता है और कर्माशाह के किसी वचन को पूरा कर उनके उपकार का बदला चुकाना चाहता हैं।' कर्माशाह ने उत्तर भिजवाया कि—'मेरे पास धन की कमी नहीं है इसलिए मैं अपना दिया हुआ धन वापस नहीं लेना चाहता हूँ। मैंने उसे ऋण मानकर नहीं दिया अपितु एक साहसी व्यक्ति को उसके न्याय के संघर्ष में सहयोग हेतु दिया। फिर भी मैं बहादुरशाह की इस भावना की प्रशंसा करता हूँ और दो वचन लेना चाहता हूँ। एक तो यह कि मुस्लिम शासकों ने पाटण में जितने जैन मन्दिर तोड़े हैं, उनका मैं जीर्णोद्धार करवाना चाहता हूँ। दूसरा यह कि गुजरात राज्य में आपके वंशज मुस्लिम शासक भविष्य में कभी किसी मन्दिर को नहीं तोड़ेंगे।'

बहादुरशाह ने कर्माशाह के ये दोनों वचन सहर्ष स्वीकार कर लिये। कर्माशाह ने उस समय करोड़ों रुपया खर्च कर पाटण के (११००) ग्यारह सौ जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया और बहादुरशाह के वंशज गुजरात के मुस्लिम शासकों ने फिर कभी किसी मन्दिर को नहीं तोड़ा। ये मन्दिर आज भी विद्यमान हैं तथा जैन मतावलम्बियों का प्रमुख तीर्थ केन्द्र हैं। इनकी भव्यता आज भी कर्माशाह के युग के उत्कृष्ट शिल्प से दर्शकों का मन मोह लेती है।

भारमल कावड़िया—अलवर निवासी भारमल कावड़िया अत्यन्त धनाढ्य व्यापारी था और राणा सांगा के विशेष आग्रह से अपनी सम्पूर्ण धन-सम्पदा सहित चित्तौड़ आकर मेवाड़ राज्य की सेवा में समर्पित हुआ था। सांगा ने भारमल को सामरिक महत्त्व के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दुर्ग रणथम्भोर का किलेदार नियुक्त किया। सांगा ने भारमल को रणथम्भोर के निकट एक लाख रुपये की जागीरी दी, अपना प्रथम श्रेणी का सामन्त बनाया एवं अपने महल के पास हवेली बनवाकर देकर उसे विशेष रूप से सम्मानित किया। अपनी मृत्यु के पूर्व सांगा ने भारमल को अपने दो छोटे पुत्रों, विक्रमादित्य एवं उदयसिंह का अभिभावक भी नियुक्त किया।

सांगा की मृत्यु के बाद उनकी विधवा रानी कर्मावती को यह आशंका हुई कि कहीं नया राणा रतनसिंह उसके दोनों अवयस्क पुत्रों को मरवा न दे। इसलिए कर्मावती ने बाबर से सन्धि करने का विचार किया और अपने सम्बन्धी बिजौलिया के सामन्त अशोक को बाबर के पास यह सन्धि-प्रस्ताव लेकर भेजा कि—'यदि बाबर हमें रणथम्भोर के बराबर ७० लाख की जागीर दे देगा तो हम रणथम्भोर का किला और उसकी इतनी ही बड़ी जागीर बाबर को दे देंगे।' बाबर ने इस अप्रत्याशित सन्धि-प्रस्ताव का हृदय से स्वागत किया और वह रणथम्भोर के बदले शाहाबाद की ७ लाख की जागीर देने को तैयार हो गया तथा उसने अशोक को कहा कि—'यदि रानी कर्मावती सन्धि के अनुसार मेरी बात को मानती रहेगी तो मैं भविष्य में विक्रमादित्य या उदयसिंह को, जिसे रानी चाहेगी, चित्तौड़ का राणा बना दूँगा।' साथ ही बाबर ने रणथम्भोर दुर्ग को खाली करवाकर अपने अधिकार में लेने के लिए अपने विश्वस्त सेवक हमूसी के पुत्र देवा को कुछ सेना रणथम्भोर रवाना कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किलेदार भारमल कर्मावती की बाबर के साथ इस गुप्त संधि से अनभिज्ञ था। इसका रहस्योद्घाटन तब हुआ जब देवा ने भारमल को किला सौंप देने की बात कही। भारमल दिन व दिन कमजोर होते मेवाड़ राज्य को देख रहा था। वह इस सन्धि के पीछे छिपी बाबर की मंशा भी समझ रहा था कि यदि मेवाड़ राज्य के सीमा-प्रान्त पर स्थित रणथम्भोर का किला एक बार बाबर के हाथ में आ गया तो यह उभरते हुए मुगल साम्राज्य के लिए मेवाड़ राज्य में प्रवेश का स्थायी द्वार बन जायेगा। इसलिये भारमल ने देवा को दृढ़तापूर्वक इन्कार करते हुए कहा कि 'मुझे राणा सांगा ने इस किले का किलेदार बनाया है और विक्रमादित्य एवं उदयसिंह का अभिभावक बनाया है। इन सबकी सुरक्षा की जिम्मेदारी मुझ पर है। रानी सन्धि करने वाली कौन होती है?' देवा के लाख प्रयत्न करने पर भी भारमल अपने निश्चय पर अडिग रहा। तब अन्तत: देवा को खाली हाथ वापस लौटना पड़ा। बाबर द्वारा लिखित अपनी 'आत्म-कथा' 'बाबरनामा' में रानी कर्मावती के सन्धि प्रस्ताव का बाबर ने उल्लेख किया। किन्तु इस सन्धि के भंग होने या असफल रहने के सम्बन्ध में बाबर व बाबरनामा, दोनों ही मौन हैं। चूंकि इस सन्धि में बाबर की असफलता है तथा भारमल का देशभक्तिपूर्ण साहस है।

रतनसिंह, विक्रमादित्य व बनवीर के अल्प शासनकाल में उत्तराधिकारी के युद्ध राजघराने के आपसी गृह-कलह में जब रणथम्भोर मेवाड़ राज्य के हाथ से निकल गया तब उसके साथ भारमल की जागीरी भी जाती रही। इन तीनों अल्पकालीन शासकों के काल में भारमल चित्तौड़ में अपने तलहटी वाले मकान में आकर शान्तिपूर्वक रहने लगा। जब महाराणा उदयसिंह गद्दी पर बैठा तथा उसके हाथ में पुन: चित्तौड़ का दुर्ग आया तब उदयसिंह ने भारमल की देशभक्ति, त्याग और महत्त्वपूर्ण सेवाओं को देखते हुए भारमल को पुन: १ लाख की जागीरी का सम्मान, किले के पास वाली हवेली में निवास व प्रथम श्रेणी के सामन्त पद से समादृत किया।

बाबर की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी हुमायूँ को भारत की सीमा से बाहर जाने को विवश कर देने वाले अफगान वीर शेरशाह ने चित्तौड़ दुर्ग को जीतने के लिए कूच किया और उसने अपनी सेना सहित चित्तौड़ के पास पड़ाव डाल दिया। मेवाड़ युद्ध करने की स्थिति में नहीं था और यदि युद्ध होता तो न केवल मेवाड़ की हार होती, अपितु मेवाड़ की बची-खुची शक्ति भी नष्ट हो जाती। ऐसे गहरे सकट में भारमल ने पुन: मेवाड़ का उद्धार किया। भारमल ने शेरशाह के सामने चित्तौड़ दुर्ग की चाबी रखते हुए कहा कि—"यदि आप दुर्ग पर अधिकार करना चाहते हैं तो सहर्ष कीजिये, इसके लिये किसी युद्ध या रक्तपात की जरूरत नहीं है। हमारा आपसे कोई विरोध नहीं है। हमारा विरोध तो उन तुर्क लोगों से है, जो विदेशी हैं और भारत को पददलित करना चाहते हैं। आप और हम तो भारतीय हैं। किला चाहे हमारे पास रहे या आपके पास, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।" भारमल के तर्क को सुनकर शेरशाह इतना सन्तुष्ट हुआ कि उसने प्रसन्नता से दुर्ग की चाबी वापस भारमल को लौटा दी तथा मेवाड़ से अपना मैत्रीभाव मानते हुए वह यहाँ से बिना युद्ध किये लौट गया। सन्दर्भ का यदि थोड़ा सा अन्तर स्वीकार कर लिया जाये तो यह सिकन्दर और पौरुष से कम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रसंग नहीं है।

अलवर में अपने निवास तक भारमल तपागच्छ का अनुयायी था। मेवाड़ में आने पर भारमल ने लोकागच्छ स्वीकार कर लिया था। तत्कालीन जैन साधु व लोक कवि श्री हेमचन्द्र रत्नसूरि ने भामाशाह व ताराचन्द के कृतित्व-व्यक्तित्व पर 'भामह बावनी' की रचना की है। जिसमें भारमल को धरती के इन्द्र के समान वैभवशाली व वृषभ के समान विशाल देहयष्टि का बलिष्ठ व धैर्यवान् पुरुष बतलाया गया है।

भामाशाह कावड़िया—भामाशाह कावड़िया वीर भारमल कावड़िया का पुत्र था। भामाशाह का जन्म १५४७ ई० में हुआ। यद्यपि आयु में भामाशाह प्रताप से ७ वर्ष छोटे थे तथापि बाल्यकाल से ही प्रताप के निकट सम्पर्क में रहते थे तथा अपने पिता उदयसिंह के शासन काल में प्रताप अपना अधिकांश समय चित्तौड़ दुर्ग पर रहकर भारमल कावड़िया के किले की तलहटी वाले मकान में भामाशाह के साथ बिताते थे और भामाशाह आखेट, शस्त्र संचालन आदि खेलों में प्रताप के साथ ही अभ्यास करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबर के पहले आक्रमण के समय भामाशाह अपने अवयस्क भाई ताराचन्द सहित प्रताप के साथ चित्तौड़ से उदयपुर आ गये। युद्ध में भारमल के वीर गति प्राप्त करने से भामाशाह प्रताप के साथ स्थायी रूप से रह गये।

प्रताप ने अपने पिता द्वारा घोषित मेवाड़ राज्य के उत्तराधिकारी जगमाल को सत्ताच्युत कर मेवाड़ की राज्य गद्दी प्राप्त की तब उन्होंने १ वर्ष बाद रामासहसाणी के बजाय भामाशाह को अपने दीवान के पद पर प्रतिष्ठित किया।

मेवाड़ में शीतला सप्तमी पर दीवान द्वारा राणा को भोज देने की परम्परा थी। भामाशाह ने इस अवसर पर प्रताप को प्रथम भोज उदयपुर की मोतीमगरी पर देकर आमन्त्रित सरदारों को दोने भरकर मोती भेंट किये। जिससे इस पहाड़ी का नाम मोतीमगरी पड़ा। फतहसागर झील के किनारे स्थित इस मोतीमगरी पर प्रताप का राष्ट्रीय स्मारक बनाया गया है।

प्रताप के गद्दी पर बैठने के तीन वर्ष पश्चात् १५७६ ई० में इतिहासप्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध में भामाशाह ने प्रताप की सेना के हरावल के दाहिने भाग का नेतृत्व किया। भामाशाह के साथ उसके भाई ताराचन्द ने भी इस युद्ध में भाग लिया और युद्ध आरम्भ होते ही दोनों भाइयों ने योजनाबद्ध ढंग से इतनी तेजी से मुगल सेना की बांयी हरावल पर आक्रमण किया कि मुगलों का युद्धव्यूह ध्यस्त हो गया और न केवल मुगलों की बांयी हरावल के पाँव उखड़ गये बल्कि वे अपने प्राणों की रक्षा में अपनी दांयी हरावल की ओर तेजी से भेड़ों के झुण्ड की तरह भाग खड़े हुए।

युद्ध में निश्चित दिखाई दे रही अपनी विजय के उत्साह में अपना घोड़ा मुगल सेना के मध्य भाग में बढ़ाकर जब प्रताप चारों ओर से मुगल सेना से घिर गये तब सादड़ी के झाला मान द्वारा मुगलों को भ्रमित किया गया एवं प्रताप के मुख्य सेनापति हकीम खाँ सूर ने अपने प्राणों को हथेली पर लेकर प्रताप को शत्रुओं के चक्रव्यूह से सुरक्षित निकाल लिया और उनके घोड़े की लगाम भामाशाह के हाथ में दे दी। भामाशाह घायल प्रताप को कालेड़ा ले गया जहाँ युद्ध से पूर्व मेवाड़ की सेना ने अपना पड़ाव डाला था।

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप के समय के अन्य दो—दीवेर एवं चावण्ड के इतिहासप्रसिद्ध युद्धों में युवराज अमरसिंह के साथ भामाशाह ने सेना का नेतृत्व किया और वीरतापूर्वक युद्ध-कौशल से दोनों युद्धों में विजयश्री प्राप्त की।

प्रताप के राज्य में दो बार भीषण दुर्भिक्ष पड़ने पर भामाशाह ने मालवा को लूटा और अकाल व सूखाग्रस्त लोगों को अनाज एवं धन देकर जनता की रक्षा की तथा राजकोष को समृद्ध किया।

प्रताप की दुर्घटनाग्रस्त मृत्यु के पश्चात् भामाशाह ने गुजराज में लूटपाट कर मेवाड़ के राजकोष की धनाभाव से रक्षा की और अमरसिंह को राज्य संचालन में अपने अनुभव में सदैव मार्गदर्शन दिया।

भामाशाह ने अपना सर्वस्व मेवाड़ के राजवंश को समर्पित कर दिया था और वे प्रताप की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह को भी मेवाड़ राज्य के दीवान के रूप में सर्वसमर्पित सहयोग देते रहे।

अमरसिंह ने अपनी नई राजधानी उदयपुर में राजवंश के परिजनों के लिये अपने द्वारा आयड के पास जो दाहस्थल 'महासत्या' बनवाया भामाशाह की मृत्यु पर उसके बाहर भामाशाह का दाह संस्कार कर उनकी स्मृति में एक छतरी बनवायी और अमरसिंह ने स्वयं की मृत्यु पर भामाशाह की छतरी के पास ही अपना दाह संस्कार करने एवं छतरी बनवाने का आदेश देकर भामाशाह को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। आज भी राजपरिवार के दाह स्थल के बाहर ध्वंसावशेष ये दोनों जीर्णशीर्ण छतरियाँ महाराणा अमरसिंह एवं भामाशाह की याद दिलाती हैं। भामाशाह का निधन का प्रताप की मृत्यु के तीन वर्ष बाद १६०० ई० में हुआ।

ताराचन्द—ताराचन्द भारमल कावड़िया का द्वितीय पुत्र एवं भामाशाह का छोटा भाई था। यह भी अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता और बड़े भाई के समान अद्भुत गुणों और वीरता से भरा राजपुरुष था। हल्दीघाटी के युद्ध में ताराचन्द ने मेवाड़ की सेना के हरावल के दाहिने भाग में अपने भाई भामाशाह के साथ नेतृत्व व युद्ध किया था।

प्रताप ने अपने अन्तिम समय में जब सारा ध्यान नई राजधानी उदयपुर में केन्द्रित कर दिया तब कुम्भलगढ़ व देसूरी के पिछले भाग में मारवाड़ के राठौड़ निरन्तर उत्पात मचाते थे। इस स्थिति पर नियन्त्रण के लिये प्रताप ने ताराचन्द को नियुक्त किया और ताराचन्द ने अपने युद्ध-कौशल एवं कूटनीति से उस सारे क्षेत्र को राठौड़ों से मुक्त कर उसे मेवाड़ राज्य का अभिन्न अंग बना दिया। ताराचन्द की सफलता पर प्रताप ने ताराचन्द को इसी गोड़वाड़ क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त कर दिया।

ताराचन्द एक स्वतन्त्र प्रकृति का वीर पुरुष था और गोडवाड़ में एक स्वतन्त्र शासक की तरह जनता में लोकप्रियता से राज्य चलाता था। ताराचन्द ने साहित्य, संगीत और ललितकलाओं के विकास और उन्नयन के लिये साहित्यकारों को पूर्ण आश्रय एवं संरक्षण दिया। उसने जनता में वीर भावना का संचार करने के लिये जैन साधु लोक कवि हेमचन्द्र रत्नसूरि से 'गोरा बादल पद्‌मणि चऊपई' कथा की रचना करवाकर उसे गाँव-गाँव में प्रचारित करवाया। इस जैन कवि ने 'भामह् बावनी' की रचना की जिसके ५२ छन्दों में भारमल, भामाशाह व ताराचन्द के कृतित्व-व्यक्तित्व का काव्यात्मक परिचय मिलता है। इसी बावनी की परम्परा में आगे चलकर रीतिकाल के प्रमुख वीर रस के कवि भूषण ने अपने आश्रयदाता शिवाजी पर 'शिवा बावनी' की रचना की।

अलवर से मेवाड़ में आने के बाद भारमल तपागच्छ के बजाय लोकागच्छ का अनुयायी बन गया था। इसलिये भामाशाह ने अपने दीवान पद के कार्यकाल में और ताराचन्द ने अपने गोडवाड़ के प्रशासक पद के कार्यकाल में जैन धर्म के लोक प्रचार-प्रसार में भरपूर योगदान दिया। दोनों भाइयों के प्रयत्न से मेवाड़ में अनेक नये जैन ग्रामों की स्थापना हुई जिनमें 'भिंगरकपुर' उल्लेखनीय है, जो वर्तमान में भीण्डर है।

भारमल, भामाशाह एवं ताराचन्द की सेवाओं के देखते हुए मेवाड़ के राजवंश ने इस कुल के उत्तराधिकारी को मेवाड़ राज्य के दीवान पद पर प्रतिष्ठित करने का स्थायी कुलाधिकार प्रदान किया और तदनुसार जीवाशाह व रूपाशाह आदि भामाशाह के पुत्र-पौत्र मेवाड़ राज्य के दीवान रहे।

मेवाड़ के महाराणाओं ने भामाशाह के वंश की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये समस्त जैन कुलों के भोज, उत्सव, पर्व आदि में भामाशाह के वंशज का प्रथम अभिषेक-तिलक, प्रथम सम्मान एवं प्रथम भोजन का विशेषाधिकार दिया तथा अन्य प्रभावशाली ओसवाल कुलों द्वारा इस परम्परा पर आपत्ति किये जाने पर महाराणा सज्जनसिंह एवं महाराणा फतहसिंह ने भी भामाशाह ने वंशजों की इस प्रतिष्ठा को यथावत् रखने के पुनः आदेश दिये।

भारमल, भामाशाह एवं ताराचन्द आदि की सेवाओं के कारण ही मेवाड़ राज्य में जैन धर्म को राजधर्म के समान प्रश्रय व सम्मान प्राप्त हुआ। आज समूचा मेवाड़ प्रान्त प्रसिद्ध जैन मन्दिरों, जैन आचार्यों एवं जैन उपाश्रयों का संगम केन्द्र हैं तथा प्रायः सभी जैन महामात्यों के कारण मेवाड़ में जैन धर्म का काफी विकास एवं प्रसार हुआ।

रंगोजी बोलिया—रंगोजी बोलिया भी एक ऐसा अनूठा राजपुरुष है जिसकी कूटनीतिक सफलताओं ने एक हजार वर्ष से संघर्ष कर रहे मुगल व मेवाड़ के राजवंशों को परस्पर मैत्री भाव के सूत्र में बाँध दिया। युवराज कर्णसिह और शाहजादे सलीम के बीच उदयपुर के जलमहल 'जगनिवास' में जो सन्धि हुई, उसका सूत्रपात रंगोजी बोलिया ने ही किया था। यह दो राजवंशों के बीच स्वाभिमानपूर्वक समान सम्मान की सन्धि थी जिसमें कर्णसिंह और सलीम ने परस्पर पगड़ी बदलकर आपसी भाईचारा स्थापित किया था और इस सन्धि की साक्षी के रूप में शहजादे सलीम ने एक कपड़े पर अपनी पूरी हथेली का केसर का पंजा अंकित किया था। सलीम की यह ऐतिहासिक पगड़ी आज भी राजमहल के संग्रहालय में सुरक्षित है।

महाराणा अमरसिंह ने इस सन्धि की सफलता से प्रसन्न होकर रंगोजी बोलिया को चार गाँव, हाथी का होदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व दीवान का पद प्रदान कर अपने प्रथम श्रेणी के सामन्तों में विभूषित किया। रंगोजी बोलिया ने ही महाराणा अमरसिंह के राजदूत के रूप में दिल्ली दरबार में उपस्थित होकर शहजादे सलीम के बादशाह जहाँगीर बनने पर मेवाड़ की बधाई दी और बादशाह जहाँगीर से महाराणा अमरसिंह एवं मेवाड़ की नयी राजधानी उदयपुर के निर्माण के लिये हीरे-जवाहरातों की अमूल्य भेंट स्वीकार की।

यद्यपि रंगोजी बोलिया मेवाड़ राज्य के प्रमुख राजनयिक के रूप में दिल्ली दरबार की गतिविधियों में मेवाड़ राज्य का प्रतिनिधित्व करता था तथापि मेवाड़ राज्य के दीवान के रूप में भी उसने प्रथम बार मेवाड़ के गाँवों का सीमांकन एवं सामन्तों की सीमाएँ निश्चित कर मेवाड़ राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने के उल्लेखनीय कार्य किये। दिल्ली दरबार में रंगोजी बोलिया की सफल राजनयिक भूमिका से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने रंगोजी बोलिया को ५२ बीघा जमीन देकर सम्मानित किया।

सिंघवी दयालदास— सिंघवी दयालदास मेवाड़ के राजपुरोहित की निजी सेवा में था। दयालदास का विवाह उदयपुर के पास देवाली गाँव में हुआ था। उसने अपने स्वामी राजपुरोहित से अपनी पत्नी का गौना लाने के लिये अवकाश की माँग की एवं सुरक्षा के लिये किसी शस्त्र की माँग की। राजपुरोहित ने उसे अपनी निजी कटारी देकर अवकाश की स्वीकृति दे दी।

दयालदास सकुशल अपनी ससुराल देवाली गाँव पहुँच गया और वहाँ उसका अच्छा स्वागत-सत्कार किया गया। भोजन के उपरान्त विश्राम के समय उसके मन में पता नहीं क्या विचार आया कि उसने राजपुरोहित की कटारी का गुप्त खण्ड खोलकर देखा। उसमें उसे एक कागज मिला। उस कागज को पढ़ते ही चौंक गया और पत्नी का गौना छोड़ सीधा ही राजदरबार में महाराणा राजसिंह की सेवा में उपस्थित हुआ और उन्हें वह कागज दे दिया। महाराणा ने तत्काल राजपुरोहित और अपनी छोटी रानी को बन्दी बनवा लिया। उक्त कागज में एक ऐसे षड्यन्त्र की रूपरेखा थी जिसके अनुसार छोटी रानी के पुत्र को राजगद्दी पर बिठाने के लिये राजपुरोहित एवं छोटी रानी ने महाराणा राजसिंह की हत्या करना सुनिश्चित किया था। महाराणा ने दयालदास को तत्काल अपनी निजी सेवा में रख लिया। कुछ ही समय में महाराणा के प्रति अपनी विश्वसनीयता और योग्यता से निरन्तर पद-वृद्धि प्राप्त करते हुए दयालदास मेवाड़ राज्य का दीवान बन गया।

बादशाह औरंगजेब ने जब महाराणा राजसिंह के विरुद्ध मेवाड़ राज्य पर आक्रमण किया तब मुगल सेना ने लोगों को कत्ल कर, लूट-पाट कर और मन्दिरों को तोड़कर मेवाड़ को गम्भीर मानवीय, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षति पहुँचाई। इसी समय कहते हैं एक मुगल टुकड़ी के हाथ में सिंघवी दयालदास की एक मात्र बहिन पड़ गयी और वह मुगल टुकड़ी मेवाड़ के दीवान की बहिन का अपहरण कर ले गयी।

दयालदास पर अपनी बहिन के अपहरण का बहुत प्रभाव पड़ा। क्रोध एवं क्षोभ में उसने अपनी माता, पत्नी, पुत्री आदि कुल की सभी स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया और औरंगजेब के आक्रमण का बदला लेने के लिये उसने अपनी सेना के साथ मालवा की ओर कूच किया। मालवा पर भीषण आक्रमण कर उसने असंख्य मुगलों को मौत के घाट उतार दिया। मुगल थानों को तहस-नहस कर उसके स्थान पर मेवाड़ के थाने स्थापित कर दिये। मुगल बस्तियों में आग लगा दी और सम्पन्न मुगलों का सारा धन व आभूषण लूट लिये। मालवा से लौटते समय भी वह अपने मेवाड़ राज्य की सीमा तक रास्ते भर मुगलों के विरुद्ध ऐसी ही कठोर कार्यवाही करता रहा।

इस लूट के अतुल धन व अलंकारों को उसने अपने पास नहीं रखा। औरंगजेब के आक्रमण से जो हिन्दू प्रजा क्षतिग्रस्त हुई थी, उसे खुले मन से उसने वह धन बाँटा और निर्धन लोगों को भी खुलकर दान दिया। शेष जो धन बचा वह भी इतना अधिक था कि ऊँटों पर लादकर दयालदास ने महाराणा राजसिंह को भेंट किया।

मालवा पर आक्रमण के बाद औरंगजेब ने चित्तौड़ में मुगल सेना बढ़ा दी। महाराणा राजसिंह की मृत्यु के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद जब महाराणा जयसिंह गद्दी पर बैठा तब चित्तौड़ से मुगलों की शक्ति को नष्ट करने के लिए सिंघवी दयालदास ने शहजादा आजम और सेनापति दिलावर खाँ की सेना पर भीषण आक्रमण किया। यद्यपि इस युद्ध में दयालदास को तात्कालिक सफलता नहीं मिली किन्तु इस युद्ध के पश्चात् चित्तौड़ में मुगल शक्ति के पाँव फिर कभी नहीं जम पाये और अन्ततः चित्तौड़, मेवाड़ राज्य की गौरवशाली प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी के रूप में मेवाड़ राज्य का अभिन्न अंग बन गया।

अपने जीवन के सारे उत्कर्ष एवं उद्देश्यों की पूर्ति व प्राप्ति के बाद सिंघवी दयालदास ने स्वेच्छा से अपने को राजकाज से मुक्त कर दिया और धर्म की शरण में अपने पराजीवन का उद्धार करने में लग गये। दयालदास के पास जो कुछ धन-सम्पत्ति थी वह उन्होंने अपने पास नहीं रखी और उससे अपने स्वामी महाराणा राजसिंह की स्मृति में कांकरोली के पास राजसंद नामक विशाल झील का निर्माण किया और झील के पास ही पहाड़ी पर एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण करवाया। राजसंद झील आज भी आस-पास के पचासों गाँवों के सिंचाई एवं पेयजल का मुख्य स्रोत है और यह जैन मन्दिर अपने वीर निर्माता दयालदास के नाम से प्रसिद्ध होकर उसकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये हुए है।

मेहता अगरचन्द—मेहता अगरचन्द जिस समय मेवाड़ राज्य की सेवा में उभर कर आया वह समय मेवाड़ राज्य का संक्रमण काल था। एक ओर मेवाड़ का राजपरिवार गृहकलह के संघर्ष में उलझा हुआ था तो दूसरी ओर मेवाड़ पर मराठों का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। महाराणा अरिसिंह द्वितीय ने मेहता अगरचन्द को मांडलगढ़ जैसे मेवाड़ के सन्धिस्थल के सामरिक दुर्ग का किलेदार एवं राज्य कार्य का प्रशासक नियुक्त किया। इसके पश्चात् महाराणा ने मेहता अगरचन्द को अपना निजी सलाहकार और फिर मेवाड़ राज्य का दीवान नियुक्त किया।

जब माधवराव सिन्धिया ने उज्जैन को घेरा तभी मेहता अगरचन्द ने महाराणा अरिसिंह को मराठों से वहीं युद्ध करने के लिये तैयार कर लिया और स्वयं युद्ध में बढ़-चढ़कर भाग लिया और वीरता का जौहर दिखाया। इस युद्ध में अगरचन्द काफी घायल हो गया। माधवराव ने अगरचन्द को कैद कर लिया पर वह माण्डलगढ़ के प्रशासनिक काल में अपने मित्र रहे रूपाहेली के सामन्त ठाकुर शिवसिंह द्वारा भेजे गये बावरियों की सहायता से माधवराव की आँखों में धूल झोंककर, मराठों की जेल से मुक्त होकर वापस सकुशल मेवाड़ आ गया। इसकी प्रतिक्रिया में जब माधवराव सिन्धिया ने अपनी मराठी सेना मे उदयपुर को घेरने का प्रयास किया तब भी मेहता अगरचन्द ने महाराणा के साथ युद्ध में भाग लिया। इसके पश्चात् मराठों ने जब टोपल मंगरी व गंगरार को घेरा तब भी मेहता अगरचन्द ने महाराणा के साथ युद्धों में भाग लेकर मराठों को मुँहतोड़ जवाब दिया। इसके बाद जब अम्बाजी इंगलिया के सेनापति गणेशपन्त ने मेवाड़ पर हमले किये तब उन सभी युद्धों में मेहता अगरचन्द ने वीरतापूर्वक भाग लेकर मराठों के विरुद्ध अपनी कठोर कार्यवाही जारी रही।

मेहता अगरचन्द को महाराणा अरिसिंह द्वितीय ने ही नहीं अपितु उसके उत्तराधिकारियों महाराणा हमीरसिंह द्वितीय एवं महाराणा भीमसिंह ने भी दीवान पद पर प्रतिष्ठित रखा और समय-समय पर उसकी योग्यता, कार्य-कुशलता, दूरदर्शिता, राजनीति और कूटनीति तथा इन सबसे बढ़कर उसके सैनिक गुणों के लिए पुरस्कृत-अभिनन्दित कर उसे कई रुक्के प्रदान किये।

मेहता मालदास—मेहता अगरचन्द की ही तरह उसका उत्तराधिकारी मेवाड़ का दीवान सोमचन्द गाँधी भी कठोर कार्यवाही द्वारा मेवाड़ को मराठों के आतंक से मुक्त करने का पक्षधर था। दुर्भाग्य से महाराणा भीमसिंह एक नितान्त सरल, सीधा और भोला महाराणा था और हिन्दू शक्तियों की आपसी लड़ाई-झगड़े से अपने आपको कमजोर करने की दुरभिसन्धि को वह अच्छी नहीं मातता था। मराठों ने भीमसिंह के इस स्वभाव का लाभ उठाने के लिए मेवाड़ पर अपना दबाव और बढ़ा दिया था। ऐसे समय दीवान सोमचन्द गाँधी को एक ऐसे वीर साथी की आवश्यकता थी जो अपने साहस और शौर्य से मेवाड़ को मराठों के आतंक से भयमुक्त कर सके। इस समय ड्योढ़ी वाले मेहता वंश के वीर योद्धा मेहता मालदास ने इस कार्य के लिए स्वयं को स्वेच्छा से प्रस्तुत किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेहता मालदास ने अपने नेतृत्व में मेवाड़ की सेना को लेकर मराठों का आतंक और दबाव समाप्त करने के लिए उदयपुर से प्रस्थान किया। इस सेना ने अपने वीर सेनापति मालदास के रण-कौशल से मराठों के सभी मुख्य ठिकानों—निम्बाहेड़ा, निकुम्भ और जीरण को जीत लिया। उसके पश्चात् ये सेना तत्कालीन मेवाड़ और मालवा के सीमा सन्धि-स्थल पर स्थित मराठों के मुख्य केन्द्र जावद को जीतने के लिये आगे बढ़ी। जावद में मराठों के प्रतिनिधि नाना सदाशिवराव ने मेहता मालदास की सेना का प्रतिरोध करने का असफल प्रयास किया और शीघ्र ही अपनी पराजय अनुभव कर कुछ शर्तों के साथ वह जावद को छोड़कर चला गया।

होल्कर राजमाता श्रीमती अहिल्याबाई को जब मेवाड़ के दीवान सोमचन्द गाँधी और वीर सेनापति मेहता मालदास की मेवाड़ से मराठों का आतंक और दबाव समाप्त कर देने की संयुक्त मंशा का पता लगा और मालदास द्वारा मेवाड़ से उठाये जा रहे मराठों के मुख्य थानों की जानकारी मिली तब उसने तुरन्त तुलाजी सिन्धिया और श्रीभाई के नेतृत्व में अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित चुने हुए योद्धाओं की मराठा सेना जावद की ओर रवाना कर दी। संयोग के जावद छोड़कर जा रहा नाना सदाशिव भी अपने सैनिकों सहित इस सेना से मिल गया।

मेहता मालदास ने बड़े साहस से इस मराठा सेना का सामना करने का निश्चय किया। मालदास के साथ सादड़ी का सुल्तानसिंह, देलवाड़े का कल्याणसिंह, कानोड़ का जालिमसिंह और सनवाड़ का बाबा दौलतसिंह आदि मेवाड़ के क्षत्रिय सामन्त योद्धाओं ने वि० सं० १८४४ में हडक्याखाल गाँव के पास हुए इस भीषण युद्ध में भाग लिया जिसमें मेवाड़ के इस वीर सेनापति मेहता मालदास ने वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की।

इन प्रमुख जैन वीरों के अतिरिक्त युवा इतिहासकार डॉ० देव कोठारी ने इतिहास के ज्ञात स्रोतों एवं अपनी मौलिक शोध से मेवाड़ के स्वतन्त्रता संघर्ष, कठिन प्रशासन और आत्म बलिदान में अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले कतिपय प्रमुख जैन वीरों एवं प्रशासकों का सूचीबद्ध उल्लेख किया है, जिन्होंने अमात्य के पद पर प्रशासक रूप में, समरांगण में योद्धा के रूप में और किलेदार व फौजबक्षी के पद पर मेवाड़ की स्वतन्त्रता के प्रहरी के रूप में अपनी ऐतिहासिक सेवाएँ दी हैं। उनका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है—

प्रधान एवं दीवान

(१) **नवलखा रामदेव**—महाराणा क्षेत्रसिंह (वि० सं० १४२१ से १४३६) एवं महाराणा लक्षसिंह (वि० सं० १४३६ से १४५४) के शासनकाल में मेवाड़ राज्य का प्रधान रहा।

(२) **नवलखा सहणपाल**—महाराणा मोकल (वि० सं० १४५४ से १४६०) तथा महाराणा कुम्भा (वि० सं० १४६० से १५२५) के शासनकाल में मेवाड़ राज्य प्रधान रहा।

(३) **तोलाशाह**—महाराणा सांगा (वि० सं० १५६६ से १५८४) के समय मेवाड़ राज्य का प्रधान रहा।

(४) **बोलिया निहालचंद**—महाराणा उदयसिंह (वि० सं० १६१० से १६२८) के समय मेवाड़ राज्य का प्रधान रहा।

(५) **कावड़िया अक्षयराज**—महाराणा कर्णसिंह के समय मेवाड़ राज्य का प्रधान रहा।

(६) **शाह देवकरण**—महाराणा जगतसिंह द्वितीय (वि० सं० १७६० से १८०८) के समय मेवाड़ राज्य का प्रधान रहा।

(७) **मोतीराम बोलिया**—कुछ समय तक महाराणा अरिसिंह (वि० सं० १८१७-२६) का प्रधान रहा।

(८) **एकलिंगदास बोलिया**—महाराणा अरिसिंह के समय अल्पायु में ही प्रधान रहा।

(९) **सतीदास एवं शिवदास गांधी**—सोमचन्द गांधी की मृत्यु के बाद दोनों महाराणा भीमसिंह के समय राज्य के प्रधान रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) **मेहता बन्धु**—मेहता अगरचन्द के पौत्र मेहता देवीचन्द को महाराणा भीमसिंह ने प्रधान बनाया। मेहता रामसिंह को अँग्रेज सरकार की सलाह पर महाराणा भीमसिंह ने प्रधान नियुक्त किया। मेहता शेरसिंह को पहले महाराणा भीमसिंह ने एवं बाद में महाराणा स्वरूपसिंह ने प्रधान नियुक्त किया। शेरसिंह के बाद महाराणा स्वरूपसिंह ने मेहता गोकुलचन्द को प्रधान नियुक्त किया। महाराणा स्वरूपसिंह द्वारा कोठारी केसरीसिंह को प्रधान नियुक्त करने के बाद महाराणा शम्भूसिंह के समय मेहता पन्नालाल प्रधान नियुक्त किया गया और कोठारी बलवन्तसिंह द्वारा त्यागपत्र देने के बाद महाराणा फतहसिंह ने मेहता भोपालसिंह को प्रधान नियुक्त किया तथा अन्तिम महाराणा भूपालसिंह के समय मेहता फतहलाल मेवाड़ राज्य का प्रधान रहा।

किलेदार एवं फौजबक्शी

मेहता जालसी द्वारा मेवाड़ राज्य पर महाराणा वंश की प्रतिष्ठा करने के बाद इसी वंश का मेहता चीलसी महाराणा सांगा, बनवीर व महाराणा उदयसिंह के समय मेवाड़ की इतिहासप्रसिद्ध राजधानी चित्तौड़गढ़ का किलेदार एवं फौजबक्शी रहा तथा मेहता मालदास महाराणा भीमसिंह के समय तथा बाद में मेहता श्रीनाथजी मेवाड़ के प्रमुख सामरिक किलों के किलेदार व फौजबक्शी रहे। इसके अतिरिक्त बोलिया रुद्रभान व सरदारसिंह भी किलेदार व फौजबक्शी रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रावल राजवंश के अन्तिम शासक रत्नसिंह के समय से राणावंश के प्रथम शासक हमीर से लेकर अन्तिम शासक महाराणा भूपाल तक मेवाड़ के वीर शासकों ने विश्व के इतिहास में अपना जो गौरवशाली स्थान बनाया, उसमें जैन वीरों, आमात्यों व प्रशासकों का भी समांतर योगदान रहा। इन जैन वीरों ने अपने ऐतिहासिक कृतित्व-व्यक्तित्व से न केवल राजमुखापेक्षी ऐतिहासिक परम्परा में जननायकों की भूमिका का ही सूत्रपात किया है अपितु इस सत्य तथ्य की भी प्रतिष्ठा की है कि बिना जननायकों के योगदान के किसी क्षेत्र का इतिहास और उसके ऐतिहासिक शासक मात्र अपने बलबूते पर ही गौरव-महिमा का अर्जन नहीं कर सकते अपितु इसके पीछे अनेक जन-प्रतिनिधियों का त्याग और बलिदान भी संलग्न रहता है।

इन जननायक जैन वीरों ने अपने साहस, बलिदान, त्याग और प्रशासन से न केवल राजनैतिक स्तर पर ही अपने सेवा पदों का प्रतिनिधित्व किया अपितु ये सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों के भी अग्रगण्य नेता थे और इन्होंने अपने कार्यकाल में मेवाड़ की गर्वीली सामाजिकता, स्वतन्त्रता संघर्षोन्मुख आर्थिक दशा और सहिष्णुता प्रधान धार्मिक स्थितियों का निर्माण किया जिससे मेवाड़ विभिन्न धर्मों व संस्कृतियों के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का केन्द्र-स्थल बनकर भारतीय इतिहास में विशेषरूप से गौरवान्वित हुआ।

□□□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org